International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 21-03-2026, Accepted: 21-04-2026, Published: 06-05-2026
Volume 8, Issue 2, 2026, Page No. 27-29

दलित वैचारिकी का विकास और मैनेजर पाण्डेय की आलोचना दृष्टि

डॉ. राजीव कुमार
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, आर. डी. एण्ड डी. जे. कॉलेज, मुंगेर, बिहार, भारत

सारांश
मैनेजर पाण्डेय समकालीन हिन्दी आलोचना के प्रमुख आलोचक हैं। हिन्दी–आलोचना की प्रगतिशील परम्परा को विकसित करने में इनकी प्रमुख भूमिका है। जाति –प्रश्न पर विचार करने की परम्परा को वो दायित्त्वपूर्ण तरीके आगे बढ़ाते हैं। वह समकालीन हिन्दी आलोचना के उन प्रमुख गैर दलित आलोचकों में से हैं जो पूरी निष्ठा और ईमानदारी से दलित–विमर्श पर विचार करते हैं ।

मूल शब्दः दलित विमर्श, जाति, वर्ग चेतना, सौन्दर्यशास्त्र, अम्बेडकरवाद, मार्क्सवाद, विचारधारा

दलित–विमर्श पर विचार करते हुए मैनेजर पाण्डेय उसमें प्रकट होने वाली विश्व–दृष्टि को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार "दलितों पर कविता लिखना या कहानी लिखना या उपन्यास लिखना, इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना महत्त्वपूर्ण यह कि उसमें दृष्टिकोण कौन–सा है, कौन सी विश्व–दृष्टि प्रकट हो रही है?"[1] इस सन्दर्भ में मुक्तिबोध के इस चिन्ता को भी ध्यान में रखना समीचीन होगा कि "मेरे मन में बार–बार यह प्रश्न उठता है कि कबीर और निर्गुण पंथ के अन्य कवि तथा दक्षिण के कुछ महाराष्ट्रीय संत तुलसीदास जी की अपेक्षा अधिक आधुनिक क्यों लगते हैं?"[2] अर्थात् करूणा या सहानुभूति मात्र से दलित–समस्या पर विचार करना ही पर्याप्त नहीं है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार गैर दलित लेखक कई बार अनायास अपने संस्कारों को ही दलित चेतना के नाम पर आरोपित करते दिखाई देते हैं। इसलिए दलितों की समस्या को चित्रित करने मात्र को ही मैनेजर पाण्डेय दलित–साहित्य के अंतर्गत स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार "दलित–साहित्य 'समझदार चुप' की जगह एक 'इंकार भरी चीख़' है और यही समकालीन दलित–साहित्य की मूलगामी विशेषता है। उनके अनुसार "इंकार से भरी हुई चीख की रचनाएँ हैं ये दलित रचनाएँ। इंकार। बहुत सारी चीजों का इंकार। ये जो रूढ़िवादी हिन्दू समाज है उसकी मान्यताएँ, उसके मूल्य उसके आदर्श इन सबका इंकार–अस्वीकार और अस्वीकार स्वभावतः चीख के साथ। समझदार चुप्पी के नाम पर नहीं। मौन की साधना का साहित्य दलित चेतना का साहित्य नहीं बन सकता है।"[3]

मुख्य भागः मैनेजर पाण्डेय दलित चेतना के संदर्भ में इंकार की चीख की जरूरत पर रूढ़िवादी हिन्दू समाज की जटिल व्यवस्था के कारण जोर देते हैं। उनके अनुसार जाति–व्यवस्था पर आधारित हिन्दू समाज में एक तरफ कुछ लोगों का बोलने की आजादी पर लगातार वर्चस्व बना रहा है तो दूसरी तरफ दलितों को बोलने का अधिकार तक नहीं दिया गया । एक अभेद्य दीवार बनाकर, दलितों को घुटन की जिन्दगी जीने को मजबूर किया जाता रहा। इसलिए वह इंकार की चीख को दलित चेतना के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

'इंकार की चीख' के साथ ही वह दलित चेतना एवं साहित्य के लिए दलित आंदोलन की भूमिका को भी निर्णायक मानते हैं। इसलिए वह दलित–साहित्य और दलित चेतना के बीच अंतर करने की जरूरत पर भी बल देते हैं। उनका मानना है कि दलित जीवन से जुड़ी प्रत्येक रचना में, दलित चेतना का अभिव्यक्त होना अनिवार्य नहीं है। ऐसे में ऐसी रचनाओं को दलित–विमर्श के अंतर्गत समाहित नहीं किया जा सकता है। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है, "जिस साहित्य में दलितों की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आकांक्षा के अनुरूप् समाज के परिवर्तन की माँग और जरूरत की अभिव्यक्ति होगी, उसी को दलित चेतना का साहित्य कहेंगे।"[4] प्रख्यात दलित चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि का भी मानना था, "दलित साहित्य जन साहित्य है, यानी मासलिटरेचर (mass literature)। सिर्फ इतना ही नहीं, लिटरेचर ऑफ एक्शन (literature of action) भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोश जनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।"[5]

अर्थात् जाति पर आधारित समाज–व्यवस्था का विरोध करते हुए दलितों की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आकांक्षा के अनुरूप एक वैकल्पिक समाज–व्यवस्था के निर्माण की माँग का होना, दलित चेतना के साहित्य में होना आवश्यक है। इसी संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय दलित आंदोलन की भूमिका को निर्णायक मानते हैं। उनके अनुसार "जैसे प्रत्येक मजदूर जन्मजात वर्ग चेतन नहीं होता, वैसे ही प्रत्येक दलित जन्मजात दलित चेतना से सम्पन्न नहीं होता। उसके जीवन में दलित चेतना के विकास की स्थितियाँ रहती हैं, लेकिन उस चेतना के विकास के लिए उसके मन में अपने समुदाय की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आकांक्षाओं का तथा विचारधारा का विकास, दलित आंदोलन से जुड़कर होता है।"[6]

अर्थात् दलित होना दलित चेतना की प्रामाणिकता को सिद्ध नहीं करता। दलित चेतना के लिए दलित हितों के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रश्नों को लेकर चलने वाले दलित आंदोलन से संबद्धता आवश्यक है। दलित विचारधारा के विकास के लिए भी मैनेजर पाण्डेय आंदोलन को अत्यंत आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार दलित आंदोलन ही किसी दलित को अपने समुदाय की विश्व–दृष्टि के प्रति प्रतिबद्ध बना सकता है। दलित आंदोलन के माध्यम से ही दलित प्रश्नों की ऐतिहासिकता से परिचित हुआ जा सकता है एवं वर्तमान में उसके तईं दृष्टि विकसित की जा सकती है। इसलिए मैनेजर पाण्डेय मराठी एवं गुजराती के दलित–साहित्य को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

दलित चेतना के विकास के महत्त्व को रेखांकित करते हुए भी मैनेजर पाण्डेय दलितों द्वारा लिखे जा रहे साहित्य को ही प्रामाणिक दलित–साहित्य मानने का अनुरोध करते हैं। उनके अनुसार "मुझे लगता है कि जब तक अपने बारे में लिखे हुए दलितों के साहित्य का पर्याप्त विकास नहीं होता, तब तक गैर–दलितों के बारे में लिखे हुए साहित्य को भले ही दलित–साहित्य कहा जाए, सच्चा दलित–साहित्य वही होगा, जो दलितों के बारे में स्वयं दलित लिखेंगे।...दलितों के जीवनानुभव और उसकी अभिव्यक्ति के प्रसंग में ज्योतिबा फुले का यह कथन

अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि गुलामी की यातना को जो सहता है वही जानता है और जो जानता है वही पूरा सच कह सकता है। सचमुच राख ही जानती है जलने का अनुभव, कोई और नहीं।"[7]
दलितों के जीवनानुभव और उसकी अभिव्यक्ति के लिए वह दलितों द्वारा दलित चेतना से युक्त लेखन को ही प्रामाणिक मानते हैं। दलितों द्वारा दलित–साहित्य के पर्याप्त विकास कर लेने की शर्त को इस संदर्भ में जोड़ते हैं। उनके अनुसार दलित लेखकों को इस बात का पर्याप्त मौका दिया जाना चाहिए कि वे अपने भोगे हुए गुलामी की यातना को संपूर्णता में व्यक्त कर सकें। मैनेजर पाण्डेय दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को प्रामाणिक दलित–साहित्य मानने का अनुरोध करते हुए इसमें दलित चेतना एवं दलित आंदोलन के महत्त्व को भी अत्यंत आवश्यक मानते हैं।

जाति एवं वर्ग का प्रश्न

मैनेजर पाण्डेय जाति एवं वर्ग दोनों को बराबर महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार दोनों में किसी एक का निषेध, भारतीय समाज–व्यवस्था की इकहरी समझ देता है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार "भारतीय समाज को समझने के लिए वर्ण और वर्ग को साथ–साथ ध्यान में रखना जरूरी है। हमारे यहाँ जो लोग केवल वर्ग की धारणा के आधार पर भारतीय समाज की संरचना को समझने की कोशिश करते हैं, वे वर्ण और जाति की वास्तविकता की उपेक्षा करते हैं और इसी प्रक्रिया में भारतीय समाज की अधूरी समझ सामने लाते हैं। लेकिन दूसरी ओर वे लोग हैं, जो केवल वर्ण के आधार पर भारतीय समाज की संरचना की व्याख्या करते हैं। इस व्याख्या में भी भारतीय समाज की अनेक जटिलताएँ छूट जाती हैं। वास्तव में वर्ग एक धारणा है और वर्ण या जाति एक वास्तविकता है।"[8]
अर्थात् भारतीय समाज की जटिल संरचना को सिर्फ जाति या सिर्फ वर्ग के परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा जा सकता। इसलिए भारतीय समाज की संरचनाको संपूर्णता में समझने एवं व्याख्यायित करने के लिए जाति एवं वर्ग दोनों को ही समान महत्त्व दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। मैनेजर पाण्डेय जाति को भारतीय समाज की वास्तविकता मानते हैं जबकि वर्ग को एक मार्क्सवादी अवधारणा किसी अवधारणा तक पहुँचने एवं उसको निर्मित करने के लिए समाज की वास्तविक समस्याओं की समझ आवश्यक होती है। जाति प्रश्न की वास्तविकता की समझ ही जाति–मुक्ति के संघर्ष को वर्ग की अवधारणा से जोड़कर व्यापक बनाती है । भारतीय समाज व्यवस्था की वर्णवादी संरचना दलित समुदाय के अंतर्गत आने वाले लोग वर्ग की धारणा के अनुसार सर्वहारा के अंतर्गत आते हैं। यह सही है कि सर्वहारा के अंतर्गत किसी भी जाति का गरीब शामिल होता है लेकिन यह भी सच है कि अधिकांश गरीब आबादी यहाँ दलितों की ही है। इसलिए वर्ग और जाति दोनों की समझ अत्यंत आवश्यक है।
वर्ग और वर्ण की एकता को आवश्यक मानते हुए मैनेजर पाण्डेय भारतीय मार्क्सवाद एवं मार्क्सवादियों की सीमाओं को भी रेखांकित करते हैं। दलित–विमर्श के अंतर्गत भी भारतीय मार्क्सवादियों की पुरजोर आलोचना की गई है। मैनेजर पाण्डेय यह मानते हैं कि मार्क्सवाद की सफलता के लिए मार्क्सवादियों की भी आलोचना आवश्यक है क्योंकि "प्रायः जनता सिद्धांतों और विचारधाराओं को किताबों के सहारे उतना नहीं जानती जितना सिद्धांतों और विचारधाराओं को मानने वाले के आचरण से।"[9] मार्क्सवाद को मैनेजर पाण्डेय आत्मालोचन को महत्त्व देने वाली विचारधारा मानते हैं। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि जाति प्रश्न को समझने में भारतीय मार्क्सवाद से कुछ भूलें हुई हैं। इसलिए इस आलोचना को स्वीकार करके ही मार्क्सवाद जाति प्रश्न के समाधान में योगदान दे सकता है। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने बताया है, "मार्क्सवाद एक आलोचनात्मक दृष्टि है। उस आलोचनात्मक दृष्टि की सार्थकता तभी होती है जब उसे अपनाने वाला व्यक्ति संपूर्ण जीवन जगत और समाज के साथ–साथ अपनी चेतना और कर्म के बारे में भी आलोचनात्मक हो। इसीलिए मार्क्सवादी आलोचना दृष्टि केवल दूसरों की ही आलोचना नहीं करती वह अपनी और अपनों की भी आलोचना करती है।"[10] अतः दलित आलोचक आर.डी.आनंद का यह कहना उपयुक्त प्रतीत होता है, "मैं यह समझ पाया हूँ कि दलितों के हितों की रक्षा मार्क्सवाद से कहीं भी खंडित नहीं होती है। मार्क्सवाद में दर्शन की स्पष्टता है तथा पूरा का पूरा अम्बेडकरवाद मार्क्सवाद में निहित है।"[11]
मार्क्सवादी आलोचना–दृष्टि के इस दायित्व का बोध मैनेजर पाण्डेय के यहाँ दिखाई पड़ता है। इसलिए वह हर तरह के शोषण से मुक्ति एवं बराबरी का समाज बनाए जाने के लिए दलित–प्रश्न को भी पर्याप्त महत्त्व देते हैं। दलित–प्रश्न को पर्याप्त महत्त्व न दे पाने के कारण भारत के कम्यूनिस्ट आंदोलन की आलोचना भी करते हैं। एक मार्क्सवादी आलोचक होने के नाते मैनेजर पाण्डेय मार्क्सवाद एवं मार्क्सवादियों की जाति–प्रश्न को ठीक से न समझ पाने के लिए भरपूर आलोचना करते हैं। इसके लिए वह भारतीय मार्क्सवादियों के अपने जाति से बाहर न निकल पाने को भी दोषी मानते हैं। मैनेजर पाण्डेय वर्ग एवं जाति दोनों पर आधारित आंदोलन की आवश्यकता महसूस करते हैं। मार्क्सवादियों द्वारा सिर्फ वर्ग आाधारित संघर्ष की आलोचना करते हुए वह लिखते हैं, "जो जाति की वास्तविकता को भुलाकर केवल वर्ग की एकता की कामना करते हैं, वे मूर्खों के उस स्वर्ग में रहते हैं जहाँ दलित जीवन के यथार्थ को छूकर बहने वाली हवा का प्रवेश वर्जित है। जब तक जातिवाद रहेगा तब तक वर्गीय एकता भी कायम नहीं होगी।"[12]
मैनेजर पाण्डेय वर्गीय एकता के निर्माण के लिए जाति की वास्तविकता को स्वीकार करने की जरूरत पर बल देते हैं। सर्वहारा और दलितों के संघर्ष को साझा मंच प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है भारतीय मार्क्सवादी जाति की वास्तविकता को समझते हुए वर्ग की अवधारणा का निर्माण करें। वर्ग कोई आभासी धारणा नहीं है बल्कि उसका सीधा संबंध जमीनी हकीकत से होता है। मार्क्सवाद भौतिक परिस्थिति को महत्त्व देने वाला दर्शन है। जाति भारतीय परिस्थिति की कटु सच्चाई है। इसलिए वर्गीय एकता का विकास जाति–प्रश्न को महत्त्व दिए बिना नहीं हो सकता।
मैनेजर पाण्डेय मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद की एकता में भारतीय समाज की असली मुक्ति देखते हैं। उनके अनुसार "... आज के समय में भारतीय समाज को बदलने के लिए मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद की अधिक से अधिक एकता जरूरी है। मैं जब अधिक–से–अधिक कह रहा हूँ तो मेरा आशय यह है कि न तो शत–प्रतिशत मार्क्सवाद से भारतीय समाज की समग्र जटिल वास्तविकता की पहचना हो पाती है और नहीं शत–प्रतिशत केवल अम्बेडकरवाद की मदद से। इसलिए मैं यह भी दोहराना चाहूँगा कि वर्ग और वर्ण दोनों को ध्यान में रखकर उनके संबंधें की जटिलताओं को पहचनाते हुए भारतीय समाज को समझने की कोशिश करना अधिक उपयोगी है।"[13] इस संदर्भ में सुभाष गाताड़े का यह कहना भी उचित प्रतीत होता है कि "भारतीय समाज व्यवस्था जिसकी तुलना डॉ. अम्बेडकर ने एक बहुमंजिली इमारत से की, जहाँ एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के लिए सीढ़ी भी नहीं हो, उसे समझने के लिए मार्क्सवादी पद्धति को गहन ढंग से लागू करने की आवश्यकता होगी।"[14]
एक पक्ष यह मानता रहा है कि पूँजीवाद के विकास से जाति की समस्या का हल हो जाएगा। दूसरा पक्ष का मानना है कि वर्ग के प्रश्न के अंतर्गत ही जाति–समस्या का समाधान किया जा सकता है। दोनों ही मत एकताबद्ध संघर्ष के अभाव में असफल सिद्ध हुए हैं। इसलिए मैनेजर पाण्डेय मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद के बीच ज्यादा से ज्यादा सहमति एकताबद्ध संघर्ष की आवश्यकता को सामाजिक मुक्ति के लिए जरूरी मानते हैं।

दलित–साहित्य और सौंदर्यशास्त्र का प्रश्न

दलित–विमर्श के अंतर्गत वैकल्पिक सौंदर्यशास्त्र के निर्माण का प्रश्न, एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। दलित विमर्शकारों का मानना है कि परंपरागत सौंदर्यशास्त्र के आधार पर दलित–साहित्य का विश्लेषण संपूर्णता में नहीं किया जा सकता। दलित–साहित्य की समग्रता में व्याख्या के लिए नये सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रतिमानों के आधार पर दलित–साहित्य को नहीं समझा जा सकता। दलित–साहित्य आंदोलनधर्मी साहित्य है। जिसमें दलित समाज की राजनीतिक और सामाजिक शोषण एवं संघर्षों की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए दलित–साहित्य का मूल्यांकन सिर्फ साहित्यिक प्रतिमानों के आधार पर नहीं हो सकता। इसके लिए एक तरफ पहले से स्थापित सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमानों का निषेध जरूरी है तो दूसरी तरफ वैकल्पिक सौंदर्यशास्त्र का निर्माण भी उतना ही आवश्यक है ।

साहित्य में आए नए आंदोलन एवं सामाजिक आंदोलनों से उपजे साहित्य के संदर्भ में नए सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता हमेशा महसूस की गई। छायावाद और प्रगतिवाद के संदर्भ में इसे देखा भी गया है। इसलिए मैनेजर पाण्डेय का मत है कि "व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन से जुड़ा साहित्य का नया आंदोलन नया सौंदर्यबोध और उसका शास्त्र विकसित करना चाहता है। इसलिए प्रगतिशील लेखकों से प्रेमचंद ने कहा था कि 'हमें सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी'।"[15]

साहित्य रचना के साथ–साथ सौंदर्यबोध एवं उसका शास्त्र विकसित करने की भी महती जिम्मेदारी साहित्यिक आंदोलन पर होता है। प्रेमचंद जब सुन्दरता की कसौटी बदलने की माँग कर रहे थे तब वह परंपरागत सौंदर्य की कसौटी से मुक्ति की ही कामना कर रहे थे। बदलते समय में साहित्य के रूप और वस्तु में बदलाव के साथ बदले हुए सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता अपरिहार्य होती है। मैनेजर पाण्डेय प्रतिरोध के सौंदर्यशास्त्र के विकास में जाति, लिंग और वर्ग से जुड़ी विचारधाराओं की भूमिका को अहम् मानते हैं। वह सौंदर्यशास्त्र को महज कला पक्ष तक ही सीमित नहीं मानते। उनके अनुसार "सौंदर्यशास्त्र कला की अलौकिक अनुभूति का शास्त्र नहीं है। वह कलात्मक सौंदर्य के बोध और मूल्यों के शास्त्र हैं, और बोध की प्रक्रिया तथा मूल्यों के निर्माण में जाति, वर्ग और लिंग से जुड़ी विचारधाराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।"[16] ऐसे में दलित–साहित्य पर पूर्व निर्धारित साहित्य एवं सौंदर्यशास्त्र के प्रतिमानों को आरोपित करना उचित नहीं है। वह दलित सौंदर्यशास्त्र के निर्माण का आधार दलित समाज एवं उसकी विचारधारा को मानते हैं। किसी विचारधारा का निर्माण भी एक लम्बी प्रक्रिया के तहत ही होता है। उसमें कई सारे तत्व जुड़ते–छूटते जाते हैं। इसी तरह सौंदर्यशास्त्र का निर्माण भी एक लम्बी प्रक्रिया की तहत होता चलता है ।

जहाँ एक तरफ मैनेजर पाण्डेय दृढ़ता से दलित सौंदर्यशास्त्र के वैकल्पिक रूप की जरूरत एवं समर्थन में हैं तो दूसरी तरफ वह यह भी मानते हैं कि दलित–साहित्य अभी तक प्रतिरोध का सौंदर्यशास्त्र विकसित नहीं कर पाया है। उनके अनुसार "अभी तो दलित–साहित्य में ऐसा साहित्य नहीं दिखाई देता जो अभिजनवादी सौंदर्यशास्त्र के सामने एक प्रतिरोध का सौंदर्यशास्त्र विकसित करता हो। जरूरत इस बात की है कि संरचना के बारे में, इतिहास के बारे में, संस्कृति के बारे में, यहाँ तक कि साहित्य के बारे में, उस तरह सवाल करें जैसे सवाल कबीर किया करते थे।... दलितों का सच अभिजात वर्ग के लोगों का सच नहीं है।"[17] ओमप्रकाश वाल्मीकि भी इन्हीं सारे सन्दर्भों को समझते हुए दलित साहित्य के नए सौन्दर्यशास्त्र के विकास को ज़रूरी मानते हैं। अतः उन्होंने लिखा कि "अलग सौंदर्यशास्त्र की परिकल्पना से हिंदी साहित्य का विघटन नहीं विस्तार होगा, ऐसी मेरी मान्यता है।" [18]

निष्कर्ष

अर्थात् जब दलित समुदाय का सच अभिजात वर्ग के लोगों के सच से अलग है तो उसका साहित्य भी अलग होगा। दलित–साहित्य को जाति व्यवस्था के विरोध में उपजा साहित्य माना जाता है। समाज के अभिजात वर्ग द्वारा दलितों पर किए जाते रहें शोषण के प्रतिरोध का साहित्य है, दलित–साहित्य। ऐसे में दलित–साहित्य का सौंदर्यशास्त्र भी अभिजनवादी सौंदर्यशास्त्र के प्रतिरोध का ही शास्त्र होगा। मैनेजर पाण्डेय का मानना है कि दलित सौंदर्यशास्त्र अनिवार्यतः प्रतिरोध का ही सौंदर्यशास्त्र होगा परंतु अभी इसे विकसित होना है। परंपरा, इतिहास, संस्कृति, साहित्य पर विचार करते हुए, दलित विचारधारा के आधार पर विकसित करने की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी, दलित–साहित्य एवं इसके रचनाकारों पर है।

संदर्भ सूची

1. सर्वेश कुमार मौर्य (संपा), मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और दलित दृष्टि, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. सं. 23
2. नेमिचंद्र जैन (संपा), मुक्तिबोध रचनावली रू पाँच, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1985, पृ. सं. 288
3. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और दलित दृष्टि, पृ. सं. 24
4. उपरोक्त, पृ. सं. 51
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, , पृ. सं 15
6. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और दलित दृष्टि, पृ. सं 51–52
7. उपरोक्त, पृ. सं 50
8. उपरोक्त, पृ. सं 46
9. उपरोक्त, पृ. सं. 41
10. उपरोक्त, पृ. सं. 41
11. आर.डी.आनंद, दलित प्रश्न और मार्क्सवाद, उद्भावना प्रकाशन, गाजियाबाद, 2013, पृ. सं.12
12. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और दलित दृष्टि, पृ. सं. 83
13. उपरोक्त, पृ. सं. 126
14. सुभाष गाताडे, बीसवीं सदी में डॉ. अम्बेडकर का सवाल, दखल प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ. सं.139
15. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और दलित दृष्टि, पृ. सं. 91
16. उपरोक्त, पृ. सं. 91
17. उपरोक्त, पृ. सं. 25
18. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – भूमिका, पृ. सं. 11